संत कवि कबीर की सामाजिक चेतना

डॉ0 अल्ताफ
(एसोसिएट प्रोफेसर)

शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग
शिब्ली नेशनल पी0जी0 कॉलेज, आजमगढ़
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

मयंक तिवारी

शोधार्थी (हिन्दी)
शिब्ली नेशनल पी0जी0 कॉलेज, आजमगढ़
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

निर्गुण काव्यधारा के महान कवि कबीर दास का भक्तिकाल में सर्वोच्च स्थान है। भारत भूमि अनेक रत्नों की खान रही है। उन्हीं महान रत्नों में एक थे संत कबीर। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी की तथा उसी भाषा में कबीर समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है।

तत्कालीन समाज में हिन्दुओं की तीर्थ–यात्रा एवं मुसलमानों की हज यात्रा भी प्रचलित थी। समाज में अनेक दुष्कर्म करके भी लोग तीर्थ या हज करके पापों से पूरी तरह निवृत्त मान बैठते थे। इससे लोग मोक्ष की प्राप्ति का भी अनुभव करते थे। लोगों की मान्यता थी कि किसी भी तीर्थ पर जाकर वहाँ स्नान ध्यान करने से पुण्य की प्राप्ति होती है। संत कवि इस आडम्बर से ऊब चुके थे। कबीर यह देखकर आश्चर्य व्यक्त करते हैं, कि लोगों ने मुक्ति को इतना सस्ता समझ रखा है और पानी में नहाकर और राम–नाम को रटकर ही उसे उड़ा लेना चाहते हैं। ऐसे प्रश्नों की निरर्थकता पर कबीर कह उठते हैं–

'तीरथ करि–करि जग मुवा, हूँधै पाँणी न्हाइ।
रामहि राम जपंतडाँ, काल घसीट्यों जाइ।।'

संत कवियों का विचार था कि जिस प्रकार ब्रह्म शरीर के भीतर है, वैसे ही तीर्थ भी शरीर के भीतर है। अपने शरीर के अंदर स्थित मनःस्थितियों को पवित्र रखना ही तीर्थ के समान है। रवीन्द्र कुमार सिंह के अनुसार 'भला यह कैसे उपहास की बात थी। वास्तव में, तीर्थाटन तो

विषैली लता के समान है जिसका न कोई मूल है और जिसमें न कोई सार है। यदि मन में सच्चाई नहीं है और हृदय में वासना की अग्नि धधक रही है, तो तीर्थाटन से कुछ नहीं होगा।'

संत कवियों ने तीर्थ–यात्रा को जीवन के विरुद्ध माना है। संतों द्वारा धर्म के ठेकेदार के पद पर कब्जा जमाए पुजारियों और पंडों पर कड़ा प्रहार किया गया है। संतों ने घूम–घूमकर तीर्थ यात्रा के विरुद्ध प्रचार किया। रविन्द्र कुमार सिंह का मत है कि–'कवियों ने तीर्थ–यात्रा के विरुद्ध जो उपदेश दिए हैं, उसके कुछ अन्य कारण भी थे। उस समय यातायात की कठिनाई के साथ–साथ देश में परिव्याप्त दीनता और अराजकता के कारण स्थान–स्थान पर लूट–मार होने लगी थी। मुस्लिम बादशाहों की धर्मान्धता के कारण भी यात्रियों को पीड़ित किया जाता था।' इसीलिए संत कवियों ने गृहस्थी में रहकर ही ईश्वर उपासना करने के नियम को बताया। जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, केवल तीर्थ–यात्रा तक सीमित नहीं है, तो यहाँ–वहाँ भटकने की आवश्यकता ही क्या है? यदि तीर्थ स्थान के बाद भी मन की अपवित्रता बनी रहे, तो इसका क्या लाभ हुआ? यदि तीर्थ–यात्रा के बाद भी वही सामान्य मृत्यु का ग्रास बनना है तो यह सब व्यर्थ है–

'जोगी जती तपी संन्यासी बहु तीरथ भ्रमना।
लुंजित मुंजित मौनि जटा धरि अंत तऊमरना।।'

जो व्यर्थ तीर्थ–यात्रा को जाते हैं, ऐसे लोगों को संत दादू दयाल कहते हैं कि शरीर के द्वारा किये गये कर्मों को धोने के लिए तुम पवित्र तीर्थ–स्थानों पर जाया करते हो, किन्तु जो कर्म तुम वहां करते हो, उसे कहाँ धोओगे–

'काया कर्म लगाइ करि, तीरथ धोवै आइ।
तीरथ माह कीजिये, सो कैसे करि जाइ।।'

तीर्थाटन में तल्लीन व्यक्ति को कभी स्वर्ग का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि देखा जाय तो सच्चा स्नान गुरु की सेवा है। गुरुनानक देव ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है कि कठोर तप, दया आदि करने वाले को तो भले ही थोड़ा पुण्य मिल जाए, परन्तु प्रभु के नाम का एक कण भी उसके लिए अधिक श्रेयस्कर है। नानक कहते हैं–

:तीरथ तपु दड़िआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु ।।
सुणिआ मनिआ मनि कीता भाउ ।। अंतरगति तीरथि मलि नाउ।।'

मध्ययुगीन समाज में बहुप्रचलित उपासना रूपों में मूर्ति–पूजा का स्थान प्रमुख था। मुल्ला और पंडितों ने ईश्वर को मंदिर–मस्जिद व मूर्तियों तक सीमित कर दिया था। ऐसी स्थिति में संतों ने जनता को इस वाह्याडम्बर से दूर रहने की सलाह दी। संतों का स्पष्ट मत था कि पत्थर की पूजा निरर्थक है। पत्थर को पूजने से भला ईश्वर कैसे मिल सकता? डॉ. केशनीप्रसाद चौरसिया के मतानुसार– ''संतकालीन समाज की धार्मिक भावनाएँ रूढ़ और परम्परागत रहीं।

सामान्य जनता विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों में फंसकर हीन जीवन बिता रही थी। विजातीय धर्म परिवर्तन के बाद भी संस्कार ज्यों के त्यों बने रहे। अंधविश्वास एवं झाड़–फूंक आदि चमत्कारों के प्रति ममता शेष रही। अतः संतों ने मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थ–व्रत, मन्दिर आदि सबका तीव्र विरोध किया और दोनों धर्मो की इस वाह्याडम्बर जनित अन्ध श्रद्धा के लिए तीव्र भर्त्सना की।' मूर्ति पूजा जैसे विरोध को लेकर कबीर भ्रम विधौंसण कौ अंगर में कहते हैं–

'पाँहिन फूंका पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आंधा नर आसामुषी, याँ ही खोवै आब।।'

कबीर बड़े बेबाक तरीके से पूजा पद्धति का खंडन करते हैं। पत्थर का देव स्थान है। और उसमें पत्थर की ही प्रतिमा स्थापित की गयी है। पूजने वाला भी अन्धा है। ऐसी पूजा पद्धति से तो किसी सिद्धि प्राप्ति की आशा तो कत्तई नहीं रखनी चाहिए। कबीर अपने पद के माध्यम से सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

'जो पाथर को कहिते देव। ताकी बिरथा होवै सेव ।।
जो पाथर की पाई–पाई तिस की घाल अजाई जाई।।'

सरल और सच्चा जीवन व्यतीत करने वाले संतों और भक्तों ने सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के विपरीत जो आचरण देखा है उसका बराबर विरोध किया है। संत साहित्य लोक तथा समाज से गहन रूप में संयुक्त रहा है। संतों ने इस बात का बखूबी तरीके से प्रत्यक्ष

अनुभव किया था कि किसी भी प्रकार का कर्मकांड हो लोक जीवन को किसी प्रकार की भावात्मक प्रेरणा नहीं देता। बल्कि यह कह सकते हैं कि लोक इन रुड़ियाँ और कर्मकांड जैसे अंधविश्वासों को ढोता आ रहा है। डॉ. भगीरथ मिश्र इस बात का जिक्र करते हुए कहते है कि 'असत्य पर आधारित कवियों, पाखंडों और आडम्बरों से प्रथम तो सामाजिक चेतना कुंठित होती है और भीरता आती है, दूसरे आत्मविश्वास का भाव घटता है और तीसरे पारस्परिक भेदभाव बढ़ता है। यदि समाज के अंतर्गत इस प्रकार के आडम्बर आ गये हो, तो उनको दूर करना पहला काम है, क्योंकि उनके दूर किये बिना विभिन्न वर्गों और समुदायों का भेद–भाव नही मिट सकता।' ऐसे आडम्बरों और पाखंडों का खंडन संत कवियों ने स्थान–स्थान पर किया है।

समाज में अनेक दुष्कर्म करके भी लोग तीर्थ या हज करके पापों से पूरी तरह निवृत्त मान बैठते है।

यदि तीर्थ स्थान के बाद भी मन की अपवित्रता बनी रहे, तो इसका क्या लाभ हुआ? यदि तीर्थ–यात्रा के बाद भी वही सामान्य मृत्यु का ग्रास बनना है तो यह सब व्यर्थ है।

संत कवियों का विचार है कि अपने शरीर के अंदर स्थित मनःस्थितियों को पवित्र रखना ही तीर्थ के समान है।

धर्म और समाज दोनों में भेद–भाव डालने वाली तथा दिखावेपन की बातों का संत कवियों ने तीव्र विरोध किया है। वे माला लेकर उस जाप का विरोध करते हैं जिसमें मन इधर–उधर फिरता है और उस नमाज की भी निंदा करते हैं जो हृदय के कपट–भाव और जीव हिंसा और हत्या को दूर नहीं कर सकती है। ईश्वर को मन्दिर, मस्जिद या मूर्ति में ही केन्द्रित कर केवल वहीं जाने पर धर्म–भाव को मन में लाना और अन्य स्थानों पर अत्याचार और पाप करना, सत्य व्यवहार से दूर है। अगर हम यथार्थ में देखें तो ये धर्माडम्बर हमें झूठा मार्ग बताते हैं।

मध्ययुगीन समाज में आडम्बर और ढ़ोंगी व्यवस्था को लेकर रवीन्द्र कुमार सिंह कई प्रश्न खड़े करते हैं। उनके कथनानुसार– 'जो मूर्ति–पूजा में अपना समय लगाते हैं, उन्होंने तो अपनी मूल–पूंजी भी नष्ट कर डाली। जब ईश्वर का निवास हृदय के भीतर भी है, तो बाहर जाने का क्या लाभ? अतः मूर्तियों का चरणामृत पीना या उनका पूजन करना, सब व्यर्थ है। जो स्वनिर्मित मूर्ति को संसार का रचयिता, स्रष्टा और नियंता समझ बैठा है, उस जैसा मूर्ख कौन हो सकता है। किन्तु सच बात यह है कि मध्ययुगीन समाज ऐसे ही अन्धकार में डूब चुका था।'' मध्ययुगीन समाज में फैले खोखले लोकाचार और रुढ़ियों पर संतों ने तीव्र व्यंग्य किये हैं। संत दरिया का यहाँ उदाहरण देना समीचीन लगता है। विज्ञान द्वारा यह प्रमाणित है कि जो वस्तु निर्जीव है उसमें जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। इसी बात को लेकर संत दरिया लोगों की मानसिकता बदलने की बात करते हैं। वे समझाते हैं कि जो मूर्ति न कुछ खाती है और न बोलती है, उसकी पूजा करने से कुछ होने जाने वाला नहीं है।

मध्यकालीन समाज में जहाँ एक तरफ निर्गुण मतावलंबियों ने मूर्ति–पूजा का जोरदार खंडन किया है, वहीं दूसरी तरफ कर्मकाण्डियों एवं ढोंगियों के लिए समुचित समाधान की व्यवस्था भी कर दी है। ऐसे लोगों के लिए संतों ने साकारोपसना का मार्ग बतलाया। संतों ने बतलाया की यदि पूजा अनिवार्य ही है, तो उसके बदले साधुओं की पूजा कीजिये, क्योंकि कम–से–कम वे बोलते भी हैं तथा अनुभव करने की क्षमता भी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समस्त संत कवियों में कबीर एक ऐसे क्रांतिकारी योद्धा हैं जिसने मूर्ति पूजा पर सबसे तीव्र प्रहार किया है। कबीरदास कहते हैं–

'जेती देख आत्मा, वेता सालिगराम।
साधू प्रतपि देव हैं, नहीं पावर सू कौम।।'

कबीर की कहन क्षमता इतनी मारक है की बड़ी ही सहजता से वे न कहते हुए भी सब कुछ कह डालते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इस बात को व्याख्यायित करते हैं– 'सच पूछा जाए तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ है। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी किन्तु

अत्यंत तेज प्रकाशन–भंगी अनन्य साधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करने वाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करने वाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है।'

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन
2. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली
3. डॉ0 पारसनाथ तिवारी, कबीरवाणी संग्रह
4. माता प्रसाद, कबीर ग्रन्थावली
5. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव

इन्टरनेट एवं वेबसाइट

1. Shodhganga@inflibnet
2. www.wikipedia.org
3. https://www.google.com